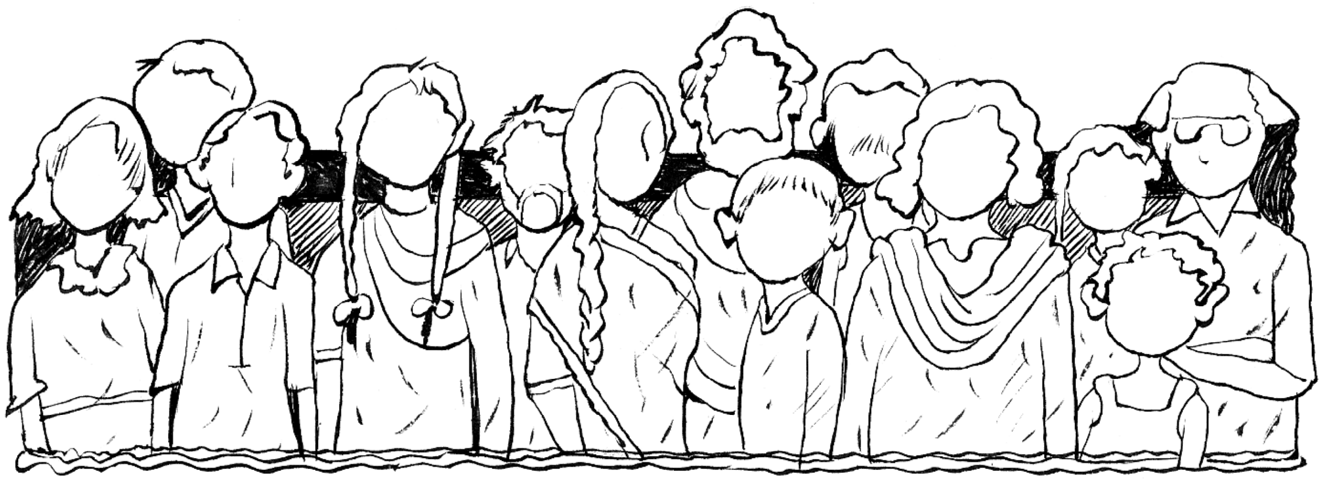
अध्यापक की अस्मिता

✍ चंदन श्रीवास्तव



भारत के पिछले साठ सालों की शैक्षिक यात्रा को देखें तो हमें उसमें तमाम चुनौतियों के साथ–साथ कई सुधारात्मक प्रयासों की छवि भी दिखाई देती है। शिक्षा आयोगों व समितियों के गठन तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विकास से लेकर शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 तक के कई शैक्षिक प्रयोग इन प्रयासों के उदाहरण हैं और आगे भी कई प्रयास जारी हैं। विद्यालयी आधारभूत संरचनाओं का विकास, नवीन बाल केंद्रित पाठ्यचर्या अथवा आधुनिक विचारों से निर्मित पाठ्यपुस्तकें, इन सबके द्वारा शैक्षिक गुणवत्ता को उत्तम बनाने की कोशिश भी की जा रही है।

अध्यापक, शिक्षा व्यवस्था का एक मौलिक अंग है जिसके माध्यम से शैक्षिक क्रियाकलापों का क्रियान्वयन होता है। आज के परिदृश्य में अध्यापक पर पारंपरिक भूमिका के अलावा कई अन्य समकालीन अपेक्षाओं को पूरा करने की जिम्मेवारी भी है। कोठारी आयोग (1964–66) ने अपनी रिपोर्ट 'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास' में अध्यापक की पेशेवर तैयारी को शैक्षिक व्यवस्था के उत्थान के लिए अति विशिष्ट माना है। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1983) ने भी अपनी रिपोर्ट 'अध्यापक एवं समाज' में राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अध्यापक की सामाजिक भूमिका को सक्रिय बनाने पर जोर दिया है। अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2009 तथा जस्टिस वर्मा आयोग रिपोर्ट–2012 के माध्यम से भी अध्यापक के पेशेवर विकास पर विशेष ध्यान देने की अनुशंसाएं की गई हैं।

अध्यापक अस्मिता का उपेक्षात्मक संदर्भ

सरकारी तंत्र द्वारा अपूर्ण योग्यता वाले अध्यापकों (पैरा–शिक्षक) को विद्यालय में नियुक्त करके अथवा समाज द्वारा अध्यापक के पेशे को निम्न स्तर का समझना, दोनों ही प्रकार से अध्यापक की उपेक्षा होती रही है। आज के औद्योगिक समाज में अध्यापक की भूमिका एक 'उत्पादक' के रूप में बनती जा रही है, जो अपने विद्यार्थियों को अपेक्षित ज्ञान मात्र सिखाता है। साथ ही, अध्यापक की आवाज एवं उसके अभिकरण दोनों ही पतनोन्मुख होते जा रहे हैं। एक प्रकार से देखें तो

शिक्षा के सतही तत्वों पर संपूर्ण ध्यान केंद्रित है, जबकि इसका प्रमुख कर्त्ता 'अध्यापक' स्वयं में उपेक्षित है।

कौन अध्यापक बन सकता है, यह विषय राज्य के अधीन है। राज्य अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों के अनुसार एक अध्यापक की कार्य प्रकृति को सदैव प्रभावित करता रहता है। इस सबके बीच शिक्षक की अपनी आवाज व अस्तित्व को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता है। यहां तक कि राज्य के निर्देश पर एक अध्यापक अपना मूल कार्य–शिक्षण – छोड़कर विद्यालय से परे अन्य कार्यों जैसे जनगणना, पोलियो उन्मूलन, चुनाव–कार्य आदि में लग जाता है। इस प्रकार देखें तो एक अध्यापक की अपनी मौलिक अस्मिता लगातार घटती जा रही है (गोविंदा, 2002)।

शिक्षा के क्षेत्र में नवरचित आधुनिक दस्तावेजों में अध्यापक की निर्मिति को लेकर नई अवधारणाओं का भी विकास हुआ। लेकिन उन अवधारणाओं में भी अध्यापक अस्मिता के एक संकुचित स्वरूप को ही मान्यता मिल पाई। उदाहरण के तौर पर, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ने अपनी बाल केन्द्रित संकल्पना में अध्यापक को मात्र सहायक के रूप में देखा है, न कि एक सक्रिय चिंतक व मनन कर्त्ता के रूप में (बत्रा, 2005)। शिक्षा के मौलिक अधिकार अधिनियम में एक विद्यार्थी, स्कूल, परिजन इत्यादि को तो परिभाषित किया गया है, पर अध्यापक कौन है, इसकी कोई चर्चा स्पष्ट रूप से नहीं की गई है। इस दस्तावेज में भी अध्यापक के सरकारी कामों का उल्लेख मात्र है, जो अध्यापक को स्वच्छंदता नहीं बल्कि डर के साथ नियमों का अनुपालन करने को बाध्य करता है। अतः आवश्यकता है, अध्यापक की सर्वांगीण अस्मिता को समझने की।

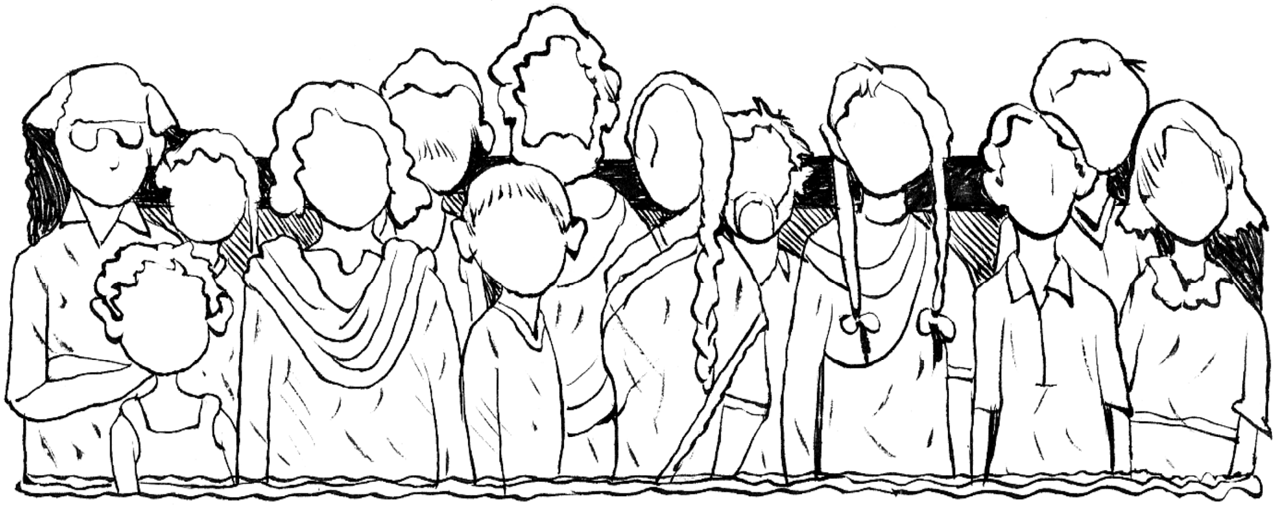
इस संदर्भ में एक सीमित सोच यह है विद्यालय में एक अध्यापक के ऊपर जितना अधिक कार्य–बोझ दिया जाएगा वह उससे उतना ही अधिक सीखेगा। इन सभी के बीच, प्रायः आत्म–चिंतन के लिए अध्यापक को समय ही नहीं मिल पाता है और वह औपचारिक शिक्षण तक ही सीमित रह जाता है। दूसरी सोच यह है कि अध्यापक की अस्मिता को प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा संवर्द्धित किया जा सकता है। लेकिन अधिकतर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समूचा केंद्र शिक्षक के शिक्षण कौशल, कक्षा–व्यवस्था अथवा विषय–ज्ञान तक ही मूलतः सीमित रहता है। एक अध्यापक के आत्म को समझने एवं उसे अनुभव करने की कोई चेष्टा नहीं की जाती है। ये प्रशिक्षण कार्यक्रम मूल रूप से परिणाममुखी विचारधारा से प्रभावित होते हैं। तीसरी सीमित सोच यह है कि अध्यापक अस्मिता को वेतन में इजाफा करके अथवा प्रोन्नति करके पुनर्बलित किया जा सकता है। इस प्रकार के पुनर्बलनों का प्रभाव क्षणिक एवं ऊपरी तौर पर होता है, न कि अंतर्मन में। अतः इन सभी कार्यक्रमों का प्रभाव मात्र सीमित व अस्थाई स्वरूप में ही संभव है, न कि अध्यापक की संपूर्ण अस्मिता को समझने में। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि विद्यालयी कार्यों, शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों अथवा वेतन/प्रोन्नति के महत्त्व को कम नहीं आंका जा रहा बल्कि उन्हें केवल अध्यापक अस्मिता के संदर्भ में विश्लेषित किया जा रहा है। मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से देखें तो एक अध्यापक का व्यक्तित्व उसके पेशेवर प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सदा से उपेक्षित रहा है।

अध्यापक अस्मिता के व्यापक आयाम

अध्यापक अस्मिता से संबंधित विवरण में 'अस्मिता' से क्या तात्पर्य है, इस संकल्पना को समझना आवश्यक है। 'अस्मिता' की संकल्पना को विभिन्न विषयों में अलग–अलग ढंग से समझा गया है। मैं यहां 'अस्मिता' का अर्थ किसी विषय मूल से नहीं ले रहा बल्कि अस्मिता के अर्थ को शिक्षा के परिदृश्य में देखने का प्रयास कर रहा हूं। लेकिन यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि 'अस्मिता' के अर्थ को संपूर्णता में समझना काफी मुश्किल है तथा इसकी कई व्याख्याएं हो सकती हैं।

'अस्मिता' की संकल्पना को समझने के लिए मूलतः इसके तीन प्रमुख आयामों–व्यक्तिगत, पेशेवर एवं सामाजिक–पर ध्यान दिया गया है। ये तीनों आयाम वस्तुतः अलग–अलग नहीं हैं, केवल उन्हें समझने के लिए इस प्रकार वर्णित किया गया है। ये तीनों आयाम वास्तविक रूप में एक–दूसरे से अंतर्संबंधित एवं एक–दूसरे से अति प्रभावित होते हैं। इनमें से किसी भी अस्मिता की संकल्पना हम एकाकी रूप से नहीं कर सकते हैं।

व्यक्तिगत अस्मिता को एक अध्यापक के जीवन अनुभवों, मान्यताओं अथवा मूल्यों व क्रियाकलापों के संदर्भ में समझा गया है। एक अध्यापक का जीवन मात्र विद्यालय तक सीमित नहीं रहता बल्कि उसके जीवन में कई ऐसे अनुभव



व कई अन्य बातें अथवा घटनाएं हो सकती हैं, जिनसे उसका विद्यालयी जीवन प्रभावित होता हो (डे व अन्य, 2006)। ऐसे ही व्यक्तिगत एवं विद्यालय पूर्व अनुभवों व मान्यताओं को उसकी व्यक्तिगत अस्मिता के अंतर्गत समझा गया है। व्यक्तिगत अस्मिता को समझना इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि किसी व्यक्ति के व्यवहारों को आकार देने में इसका विशेष योगदान होता है। एक अध्यापक के अंतर्मन को समझना अति आवश्यक है, क्योंकि वह जिस भी प्रकार का व्यवहार करता है उसकी उत्पत्ति उसके अंतर्मन से होती है। एक अध्यापक का अंतर्मन उसकी विषय–निष्ठ मान्यताओं व परिस्थितियों के आधार पर संरचित होता है (रंगनाथन व जैमिनी, 2002)। अतः व्यक्तिगत अस्मिता की समझ होनी आवश्यक है, यदि एक अध्यापक के व्यवहार को संपूर्णता में समझना हो तो।

अध्यापक की पेशेवर अस्मिता को उसकी शिक्षण–अभिक्षमता, कार्य–स्थल के माहौल, रुचि, पेशेवर लक्ष्यों, आदि के संदर्भ में समझा गया है। एक अध्यापक की पेशेवर अस्मिता काफी प्रमुख होती है, क्योंकि यह उसके कार्य को अभिलक्षित करती है। मार्सेलो (2009) के अनुसार पेशेवर अस्मिता का विकास हमेशा चलता रहता है जो विभिन्न कारकों जैसे विद्यालय, समाज, राज्य नीति आदि से प्रभावित होता रहता है। मात्र शिक्षण–प्रशिक्षण अथवा शिक्षण पेशे में आने से इस अस्मिता को नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह अस्मिता मूलतः कार्य अनुभवों के ऊपर चिंतनपूर्ण प्रक्रिया के द्वारा समयानुसार विकसित होती है।

व्यक्तिगत अथवा पेशेवर अस्मिता के साथ–साथ सामाजिक अस्मिता को समझना भी महत्त्वपूर्ण है (जेनकिन्स, 2008)। समाज अथवा समुदाय के द्वारा एक अध्यापक के कार्य को दी जाने वाली प्रतिष्ठा एवं महत्त्व को सामाजिक अस्मिता के रूप में समझा जा सकता है। यह अस्मिता भी स्वतः प्राप्त नहीं होती बल्कि इसके लिए अध्यापक को अपने कार्यों के द्वारा समाज अथवा समुदाय को विश्वास में लेना पड़ता है, जो काफी कठिन है। विभिन्न सामुदायिक स्थानों पर किए गए शोधों से यह निकलकर आता है कि सामुदायिक हित में चलाए जाने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रति शुरुआत में समुदायों का काफी संदेहास्पद व विरोधात्मक व्यवहार रहा है तथा अध्यापकों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के अथक प्रयास के द्वारा उनके विचारों में परिवर्तन लाया गया। यहां एक अध्यापक की सामाजिक अस्मिता सक्रिय भूमिका निभाती है।

अध्यापक अस्मिता के शोध संदर्भ

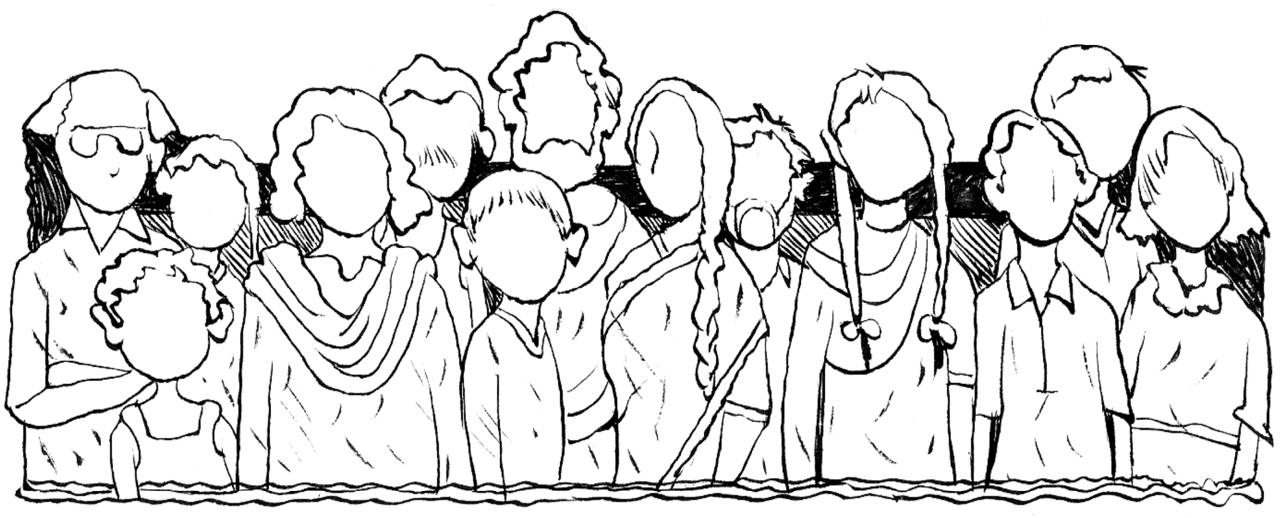
अध्यापक अस्मिता को लेकर पिछले तीन दशकों में कई महत्त्वपूर्ण शोध हुए हैं। आर्चर (2000) ने अपने शोध में अध्यापक के कार्यों में होने वाले परिवर्तनों व अंतरों का अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष निकाला कि उनके कार्य अनुभवों में परिवर्तनों के लिए, उनकी अस्मिता प्रमुख रूप से प्रभावी है। नियास (1989) ने भी अपने शोध में अध्यापक की व्यक्तिगत एवं पेशेवर अस्मिता का अध्ययन किया तथा यह विश्लेषित किया कि पेशेवर अस्मिता को समझने के लिए व्यक्तिगत अस्मिता का आधारभूत ज्ञान व समझ होना आवश्यक है। बेजार्ड (1995) ने अपने शोध–कार्य में यह

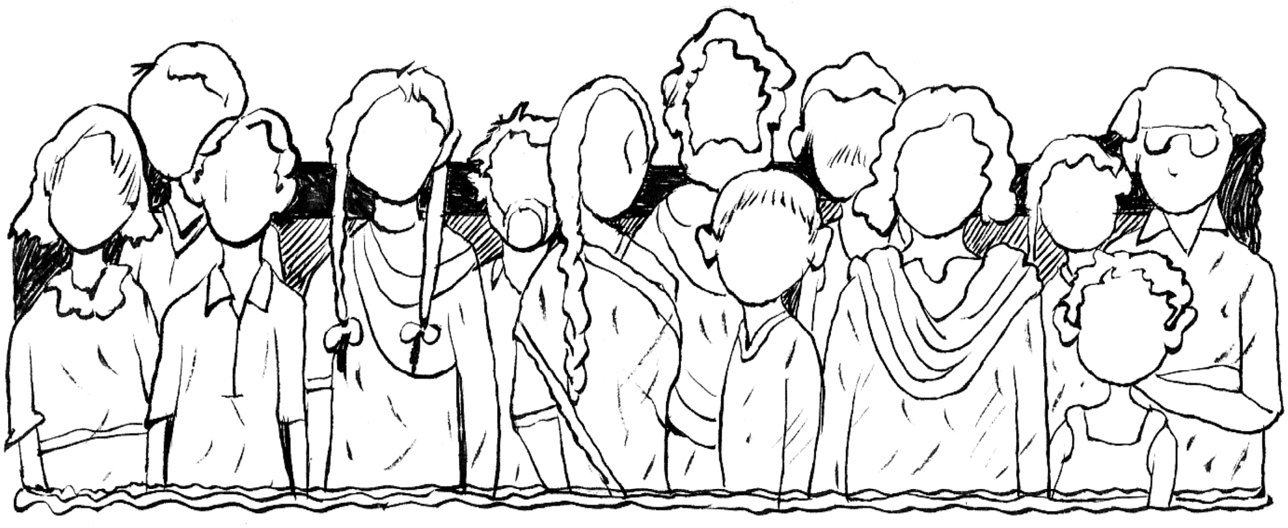
उल्लेख किया कि विद्यार्थियों की अभिवृत्ति एवं व्यवहार का अध्यापक के अस्मिता–निर्माण पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः इन सभी शोधों ने किसी न किसी रूप में अध्यापक–अस्मिता को शैक्षिक व्यवस्था एवं नियोजन का विशेष अंग माना है तथा इसके विभिन्न तत्वों को समझने का प्रयास किया है। भारतीय संदर्भ में अध्यापक अस्मिता के ऊपर अभी विशेष शोधों की कमी है एवं यह क्षेत्र अभी विकसित हो रहा है।

अब तक के विमर्श से यह निकलकर आ रहा है कि एक अध्यापक के अंतर्मन को उसके व्यवहार के संदर्भ में समझना कितना आवश्यक है एवं तमाम शैक्षिक सुधारों में इसके ऊपर ध्यान देना अति महत्त्वपूर्ण है। शैक्षिक व्यवस्था में ऐसे विकासात्मक कदम उठाने से ही सकारात्मक मौलिक परिवर्तन हो सकता है। आज के शैक्षिक परिदृश्य में कुछ ऐसे अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम विकसित हुए हैं जो अपने प्रयोगों में अध्यापक की आत्म–अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व देते हैं। पर इन कार्यक्रमों की पहुंच काफी सीमित है।

अध्यापक अपनी अस्मिता को स्वयं किस स्वरूप में समझते हैं तथा इसे अपने व्यक्तिगत, पेशेवर एवं सामाजिक आयाम से किस प्रकार संबंधित करते हैं। इसे समझने के लिए लेखक द्वारा एक लघु अध्ययन किया गया एवं उसे मानसिक स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया गया। विभिन्न विद्यालयों में पढ़ा रहे अध्यापक/अध्यापिकाओं से इस संबंध में विभिन्न बिंदुओं पर चर्चाएं की गईं। साक्षात्कार एवं प्रश्नावली के माध्यम से उनके विचार लिए गए। प्राप्त विचारों के विश्लेषण में कई संवेदनशील मुद्दों को अध्यापकों/अध्यापिकाओं द्वारा उठाया गया है, जिनकी चर्चा आगे प्रस्तुत है।

मानसिक स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में, अध्यापक के अंतर्मन एवं बाह्य जगत के मध्य का संबंध अति महत्त्वपूर्ण हैं। मानसिक स्वास्थ्य की संकल्पना में अंतः एवं बाह्य, दोनों ही के बीच उत्पन्न अंतर्द्वंद्व की परिस्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। जो अंतर्मन में घटित हो रहा होता है उसका प्रभाव बाह्य व्यवहार में परिलक्षित होता है तथा बाह्य अनुभवों के द्वारा अंतर्मन प्रभावित होता है। एक अध्यापक के अंतर्मन एवं बाहरी जीवन के बीच कई अंतर्द्वंद्व चलते रहते हैं। यदि अंतर्मन एवं बाह्य जगत के मध्य सामंजस्य स्थापित नहीं होगा तो अध्यापक अपने वैचारिक द्वंदों के साथ कक्षा में प्रवेश करेगा एवं अपनी शिक्षण–प्रक्रियाओं एवं व्यवहार में उस अंतर्द्वंद को प्रस्तुत करेगा। एक असंतुलित एवं अशांत मन में सृजनात्मक विचार नहीं उत्पन्न हो सकते। आत्मचिंतन के लिए अध्यापक के आत्म का स्थिर एवं सक्रिय रहना आवश्यक है। द्वंद्वात्मक परिस्थितियों में स्थिरता एवं सक्रियता के स्थान पर अंतर्मन में अव्यवस्था घर कर जाती है, जिसके प्रभाव में आकर शिक्षक के आत्म–विश्वास, आत्म–अभिवृत्ति, अभिरुचि आदि का क्षय होना शुरू हो जाता हैं, जो किसी भी शिक्षा व्यवस्था के लिए ठीक नहीं है। एक शिक्षक के मन में द्वंद्व पैदा करने वाले कारक व्यक्तिगत, पेशेवर अथवा सामाजिक हो सकते हैं। अध्यापकों/अध्यापिकाओं से प्राप्त उत्तरों में





इन सब की छवि दृष्टिगोचर हो रही है।

किसी भी व्यक्ति के लिए उसकी प्रतिष्ठा व आत्म–सम्मान बेहद महत्त्व रखते हैं। एक अध्यापक के संदर्भ में भी यह सत्य है। कई अध्यापकों ने 'अध्यापक' पेशे के अवमूल्यन एवं समाज में इसकी घटती प्रतिष्ठा के संवेदनशील मुद्दे को उठाया। गुणवत्ताहीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों ने इस प्रतिष्ठा–पतन में और सहयोग किया है। समाज में अध्यापन को एक दोयम दर्जे का पेशा समझा जा रहा है तथा वैसे लोग जिन्हें रोजगार के अन्य क्षेत्रों में असफलता मिली है, वे अंततः शिक्षण को अपना पेशा बना रहे हैं। ऐसे सामाजिक अनुभवों के कारण अध्यापक की अस्मिता को निम्न समझा जा रहा है। समाज इसे एक गंभीर पेशे के रूप में नहीं देखता। विद्यालयों में भी अध्यापकों में मान–सम्मान को विशेष महत्त्व न मिलने से उनके अंदर एक अलगाव व असंतोष की भावना उत्पन्न होती रहती है। किए गए लघु अध्ययन में कई अध्यापकों ने इस पेशे की घटती प्रतिष्ठा के विषय में प्रश्न उठाए हैं। उनके अनुसार वे समाज का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, जिस पर भावी समाज टिका है परंतु इतने महत्त्वपूर्ण कार्य से जुड़े होने के बावजूद उनकी प्रतिष्ठा एवं सामाजिक स्थिति लगातार गिरती जा रही है।

साथ ही विश्लेषण से यह भी निकलकर आया कि इस पेशे में आए अधिकतर अध्यापकों की रुचि 'अध्यापक' बनने की थी, लेकिन उनका समुदाय इस पेशे को खासा महत्त्व नहीं देता और यह भी स्वीकार नहीं करता कि कोई व्यक्ति अपनी रुचि से भी अध्यापक बन सकता है। उनके लिए यह रोजगार का अंतिम एवं निम्नतम साधन है। व्यक्ति के आत्म एवं बाह्य के मध्य के ऐसे द्वंद्व में अध्यापन की प्रकृति एवं प्रवृत्ति समाप्त होने लगती है। एक व्यक्ति स्वयं तो अध्यापक बनना चाहता है लेकिन सामाजिक दबाव में वह अन्य पेशा चुन लेता है। कई अध्यापक तनाव के कारण स्वयं को समुदाय से अलग कर लेते हैं अथवा अध्यापन छोड़ देते हैं। सामाजिक दबाव का अध्यापक के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है जो उसके व्यवहार, शिक्षण के प्रति रुचि, विद्यालयी कार्य के माध्यम से परिलक्षित होता है। साथ ही, आज के समाज में अध्यापक समुदाय में कई तनाव उत्पन्न हो रहे हैं। कई अध्यापक तनाव ग्रस्त होकर स्वयं को निष्क्रिय बना लेते हैं। अपने अंदर चलने वाले द्वंद्वों को वे समाप्त कर देते हैं एवं शिक्षण को एक पेशे के रूप में आजीविका का साधन मात्र मानते हैं। आवश्यकता है अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य के ऊपर ध्यान देने की एवं उनकी बातों को समझने की। समाज एक अध्यापक से कई अपेक्षाएं रखता है पर साथ ही उसकी उपेक्षा भी करता है। ऐसी स्थिति में एक अध्यापक का मनोबल हमेशा गिरता जाता है।

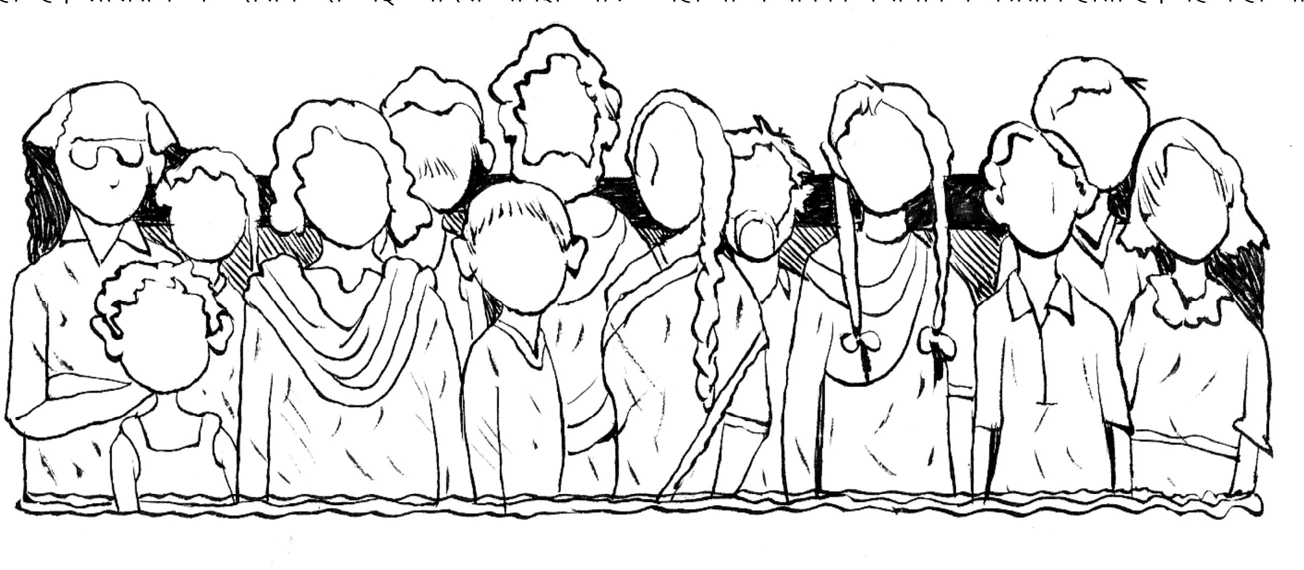
ऊपर की गई चर्चा से यह भी उभरकर आता है कि अध्यापक समाज से स्वयं के ऊपर एक विश्वास की अपेक्षा करता है। अध्यापक के लिए सामाजिक विश्वास का होना अति आवश्यक है अन्यथा एक विश्वासहीन माहौल में वह अध्यापन नहीं कर सकता। बिना परस्पर विश्वास के अध्यापक अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर सकता। आज के

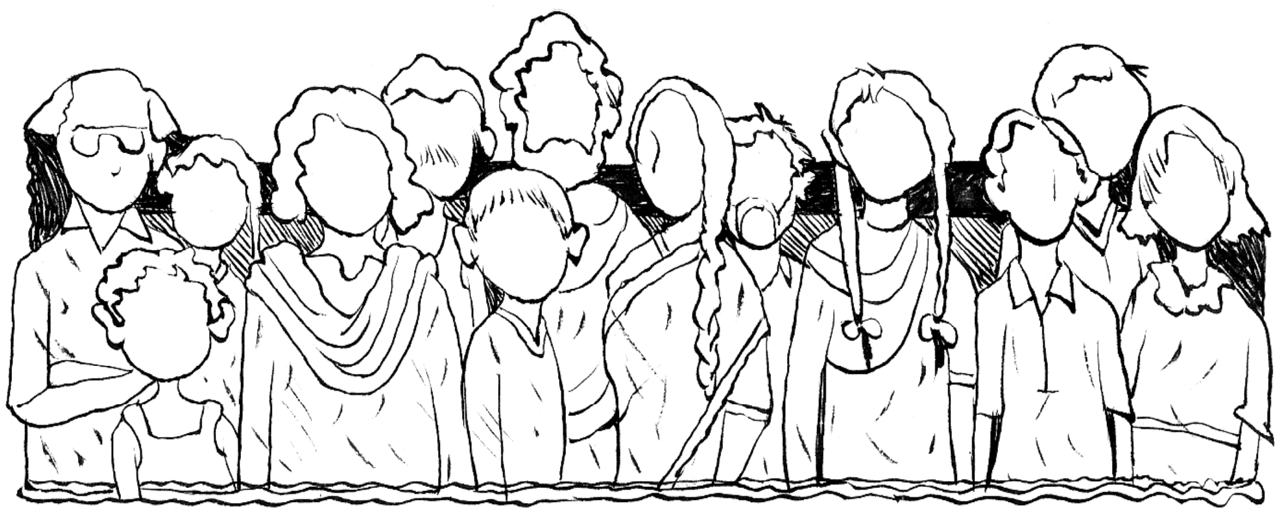
अल्प विश्वासी समाज में अध्यापक की स्वच्छंदता, सृजनात्मकता, ज्ञान के स्वरूप, शिक्षण–विधि आदि सभी चीजों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है, जो कि एक अध्यापक के लिए शारीरिक एवं भावनात्मक दोनों प्रकार से तनाव का कारण है (ट्रोमैन, 2001)।

अध्यापकों द्वारा प्राप्त उत्तरों से यह भी निकलकर आया कि एक प्रभावी, संवेदनशील एवं सक्रिय अध्यापक के रूप में सभी स्वयं को स्थापित करना चाहते हैं। परंतु विद्यालयी सत्ता उनके ऊपर हमेशा अंकुश लगाए रखती है। विद्यालयी अथवा संस्थागत राजनीति से कई अध्यापक इतने ग्रसित हो जाते हैं कि शिक्षण में उनकी रुचि जाती रहती है। अपनी चर्चाओं के दौरान कई अध्यापकों ने अपने विद्यालय के बिगड़ते शैक्षिक माहौल का उल्लेख किया, जहां एक कुशल शिक्षक को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा जाता है तथा अध्यापन को मात्र एक आजीविका के रूप में समझा जाता है। अतः मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से विद्यालयों की बदलती सामाजिक स्थिति को भी समझना आवश्यक है। अध्यापकों के मध्य गुटबाजी एक आम घटना बनती जा रही है। यह अध्यापक की मौलिकता एवं विद्यालयी मूल्य, दोनों को प्रभावित कर रही है।

एक और विशेष बात निकलकर आई और वो है अध्यापकों के स्वयं के अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम का स्वरूप। एक अध्यापक ने चर्चा के दौरान कहा कि उसने सेवा–पूर्व एवं सेवारत दोनों ही शिक्षण–प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विशेष रुचि दिखाई किंतु विद्यालयी माहौल में उनका कोई निहितार्थ नहीं है। प्रशिक्षण के दौरान दी गई आदर्श समझ और वास्तविक विद्यालयी माहौल में बड़ा अंतर होना, उनके तनाव को और बढ़ाता है। एक अध्यापक का आत्म कई विचारों व नए प्रयोगों के साथ विद्यालय में आता है, उसे उत्सुकता होती है कि वो अपने विचारों एवं प्रयोगों को विद्यार्थियों के साथ करे, उनके सीखने में योगदान दे, किंतु विद्यालय के निर्देशात्मक वातावरण में एक अध्यापक का संपूर्ण कार्य पूर्व–परिभाषित है, जिसे अनुपालन करने के अलावा, एक अध्यापक के पास कोई अन्य उपाय नहीं होता। उसकी सभी सृजनात्मकताएं भंग हो जाती हैं और वह भी विद्यालयी समाज का एक औपचारिक अंग बनकर रह जाता है। मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से इसे देखें तो यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपने अंतर्मन में संतुलन बनाए रखने के लिए प्रयासरत रहता है। जब किसी असंतुलन की स्थिति आती है तो वह किसी न किसी रूप में उसके निवारण की राह ढूंढता है। वह निवारण सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। जैसे एक अध्यापक ने बड़ी लगन एवं उत्साह के साथ सृजनात्मक ढंग से अध्यापन कार्य किया। विद्यालयी कार्यप्रणाली में उसके कार्य को कोई महत्त्व नहीं दिया गया, अतः अंत में उसने भी शिक्षण की पारम्परिक प्रणाली में पढ़ाना शुरू कर दिया।

यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि तनाव अथवा असंतोष का अध्यापकों में होना एक सार्वभौमिक संकल्पना है। ऐसा नहीं है कि अध्यापकों की ये समस्याएं मात्र कुछ ही प्रकार के विद्यालयों में हैं बल्कि अच्छे विद्यालय जहां अध्यापकों को सभी सुविधाएं एवं उत्तम वेतन मिलता है, वहां भी अध्यापकों में तनाव व असंतोष होता है। यह कहा जा





सकता है कि अध्यापकों की विविध पृष्ठभूमि के अनुसार उनके तनावों में भी भिन्नता होती है। आवश्यक नहीं है कि कोई विद्यालयी कारण ही हो, व्यक्तिगत अथवा किसी अन्य कारण से भी अध्यापक का व्यवहार परिवर्तित हो सकता है। अतः यह जरूरी हो जाता है कि एक अध्यापक के संपूर्ण अनुभवों एवं अस्मिता को समझा जाए न कि मात्र उसके पेशेवर कार्य व व्यवहार को।

प्रश्नावलियों एवं साक्षात्कार के उत्तरों में यह भी उभरकर आया कि अध्यापक स्वयं को मात्र अध्यापक की 'स्थापित भूमिका' तक सीमित नहीं रखना चाहते। वे स्वयं को अन्य मानवीय मूल्यों से भी जोड़कर देखते हैं। अतः उनकी अस्मिता में अध्यापकीय तत्व होने के साथ–साथ महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य जैसे सहानुभूति, संवेदनशीलता, नैतिकता आदि भी शामिल हैं एवं वे इन्हें अपनी अस्मिता का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। अध्यापकों की यह भी मान्यता है कि उनके तनावों एवं असंतोष को उनके पेशेवर कार्य से अलग माना जाता है तथा यह अपेक्षा की जाती है कि किसी भी परिस्थिति में उन्हें अध्यापन कार्य करना है। परंतु वे स्वयं यह अनुभव करते हैं कि अन्य तनावों के कारण उनका अध्यापन काफी प्रभावित होता है। उनकी एकाग्रता समाप्त हो जाती है तथा क्षमता का क्षय होने लगता है। ऐसी स्थिति में वे कैसे पढ़ा सकते हैं।

अंत में

यदि विद्यालय अपने अध्यापकों की परिस्थिति को समझें, उनके तनाव के कारणों पर चर्चा करें, उसके निवारण में उनकी मदद करें तो विद्यालयी वातावरण स्वयं ही सौहार्दपूर्ण होने लगेगा। अतः अध्यापकों के अनुभवों को समझना अति आवश्यक है, यदि उन्हें एक उत्तम पेशेवर के रूप में विकसित करना है। एक सशक्त एवं अस्मितापूर्ण अध्यापक की संकल्पना के लिए आज के अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों, सामाजिक मनोवृत्ति, विद्यालयी वातावरण एवं शिक्षा की पारम्परिक अवधरणा में आमूल–चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में पेशेवर कौशलों के साथ–साथ एक अध्यापक के विशिष्ट अनुभवों व विचारों के लिए भी विस्तृत स्थान होना चाहिए। अध्यापकों के स्व को बिना किसी विकृति के समझा जाए। इन सभी परिवर्तनों के क्रियान्वयन में मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण को शामिल किया जाना भी अत्यंत आवश्यक है। अपने तनाव से एक शिक्षक तभी उबर सकता है जब उसे विशेष महत्त्व एवं अवसर दिया जाए तथा उसके मनोबल को बढ़ाया जाए। इस लेख में मैंने अध्यापक को किसी जेंडर के संदर्भ में नहीं लिया है बल्कि उसे संपूर्ण शिक्षक वर्ग के द्योतक के रूप में लिया है।

अंत में मैं यह पुनः कहना चाहूंगा कि एक अध्यापक की सम्पूर्ण अस्मिता को समझे बिना उससे शिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की अपेक्षा करना संभव नहीं है। शैक्षिक विकास के लिए अध्यापक अस्मिता को महत्त्व देना किसी भी कार्यक्रम, संस्थान अथवा समाज के लिए एक पूर्वदशा होनी चाहिए।

चंदन श्रीवास्तव : केंद्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं। वे अध्यापक अस्मिता, अध्यापक वृत्तिक विकास एवं ग्रामीण शिक्षा के विषयक्षेत्र में शोध कर रहे हैं। उनसे chandan.edu@gmail.com पर संपर्क किया जा सकता है।

References:

- Archer, M. (2000). Being Human: problem of agency (2nd Ed., revised). Cambridge University Press, Cambridge.
- Batra, Poonam (2005). Voice and Agency of Teachers: Missing link in National Curriculum Framework 2005. EPW, Vol. 40, No. 40.
- Beijaard, D. (1995). Teachers' prior experiences and actual perceptions of professional identity. Teachers and teaching.
- Day, C. et al. (2006). The Personal and Professional Selves of Teacher: Stable and Unstable Identities. British Educational Research Journal, Vol.2, London, pp. 601-616.
- Government of India (1964). 'Report of the Education Commission: Education and National Development'. Ministry of Education, New Delhi.
- Government of India (1983-84). The Teacher and Society: Report of the National Commission on Teachers-I. GOI, New Delhi.
- Government of India (2012). Vision of Teacher Education in India: Quality and Regulatory Perspective (Justice Verma Commission Report). MHRD, New Delhi.
- Govinda, R. (2002) (Ed.). Indian Education Report: A Profile of Basic Education. Oxford University Press, New Delhi.
- Jenkins, R. (2008). Social Identity (third ed.). Routledge, London.
- Marcelo, C. (2009). Professional Development of Teachers: past and future. Educational Science journal, 08, pp. 5-20.
- NCERT (2005). National Curriculum Framework 2005. New Delhi.
- NCTE (2010). 'National Curriculum Framework for Teacher Education. New Delhi.
- Nias, J. (1989). Primary teachers talking. Routledge & Kegan Paul, London.
- Ranganathan, N. & Jaimini, N. (2002). Girls' Primary Education Project (Raj. & UP): An Evaluative Study of Teacher Development Processes. New Delhi.
- Troman, G. (2001). Primary Teachers' Stress. Routledge, London.

फार्म – IV

(नियम 8 दिखिए)

खोजें और जानें

प्रकाशन का स्थान	:	विद्या भवन सोसायटी, डॉ. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा, उदयपुर, राजस्थान
प्रकाशन की नियत अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक का नाम	:	रियाज़ ए. तहसीन पिता टी.एच. तहसीन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	105, पंचवटी, उदयपुर, राजस्थान
प्रकाशक का नाम	:	रियाज़ ए. तहसीन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	105, पंचवटी, उदयपुर, राजस्थान
संपादक का नाम	:	जया राठौड़
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	विद्या भवन सोसायटी, डॉ. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा, उदयपुर,
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं तथा जो कुल पूंजी के 1 प्रतिशत से अधिक अंश के धारक हैं;	:	विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर विद्या भवन सोसायटी, डॉ. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा, उदयपुर,, राजस्थान

मैं रियाज़ ए. तहसीन, एतत् द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 20.04.2014

ह0 / –

(रियाज़ ए. तहसीन)

प्रकाशक